Multidisciplinary International Magazine
(Peer-Reviewed)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
Volume 6, Issue 69-70, Jan-Feb 2021

JANKRITI जनकृति

बहु-विषयक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
(विशेषज्ञ समीक्षित)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
वर्ष 6, अंक 69-70, जनवरी-फरवरी 2021

विमर्श के केंद्र में रंगमंच

'कब्र से उठती इन्सानी रूहों की आवाज'

दिनेश कुमार पाल
(शोध- छात्र)
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयागराज
मो. 9559547136
ई-मेल:dineshkumarpal6126@gmail.com
पता- बैरमपुर, बैरमपुर, कौशाम्बी, 212214

सभागार में घुसते ही एक मरे हुए व्यक्ति का शव और उसके ऊपर माला- फूल चढ़ा हुआ था, उसकी आंखों का लाल रंग देख कर बहुत से व्यक्ति डर गए, इस नाटक के माध्यम से रंगमंच में एक नया प्रयोग देखने को मिला, हालांकि नाटक के वर्कशॉप में इस तरह की गतिविधियां कराई जाती हैं ताकि अभिनेता ऐसी परिस्थितियों से सहज हो सके। इस प्रकार के नाटक को देखने के लिए अभिनताओं के साथ साथ दर्शकों को भी माइडन्ली प्रिपेयर रहना होगा, ताकि रंगकर्मियों के साथ साथ दर्शक भी उनके अभिनय के साथ जुड सके और नाट्य कथा को अच्छे से समझ सके और समझ विकसित कर सके।

अवधेश प्रीति की कहानी हमज़मीन का नाट्य रूपांतर अजीत बहादुर द्वारा किया गया और यह नाटक अजीत बहादुर के निर्देशन में ही एस्ट्रा ऐन ऑर्गनाइजेशन की प्रस्तुति में इन्टीमैट थिएटर इलाहाबाद के द्वारा मंचित किया गया। यह नाटक गांधी जी के ६४वें शहादत दिवस की संध्या पर खेला गया। यह नाटक 30 जनवरी 2021 दिन शनिवार को मंचित किया गया, इस दिन गांधी जी की शहादत दिवस के रूप में मानाया जाता है। इस नाटक का कलेवर बहुत ही विस्तृत है और ज़मीनी भी है। अवधेश प्रीत की कहानी हमज़मीन का नाट्य रूपांतरण के अजीत बहादुर ने समसामयिकता को जोड़ते हुए किया, नाटक दंगा प्रभावित स्थानों की मार्मिकता को बयां करता है।

फूट डालो राज करो कि राजनीति ने मानवीयता को हर बार शर्मसार किया है और ये शायद कोई नई बात नही है, जो आज भी बदसूरत जारी है। नाटक हमज़मीन दो ऐसे चरित्रों की कहानी है जो किसी गड्ढे में दंगा प्रभावित स्थानों से लेकर फेके गए हैं। दंगा होने का कारण क्या है? दंगा होने की स्थिति में इंसान का अवचेतन दिमाग चेतन दिमाग पर कैसे भारी पड़ जाता है? और कोई कैसे किसी को जिंदा जला सकता है या जान से मार सकता है? कैसे साम्प्रदायिक सौहार्द की धज्जियां उड़ाने में सफल होकर लोग खुश हो जाते है? कैसे भीड़ हिंसा में तब्दील हो जाती है और लोकतंत्र को नुकसान पहुचती है, ऐसे बहुत सारे प्रश्नों को चिह्नित करता है। इस पर चर्चा करने की प्रथा को बनाने में नाटक हमज़ीमन काफी मदतगार रहा है, इस सवाल को संस्था एक्स्ट्रा ऐन ऑर्गनाइजेशन फिर लोगो के बीच ला खड़ा किया है, नाटक

हमज़मीन के माध्यम से। नाटक हमज़ीन के माध्यम से साम्प्रदायिक सौहार्द को बनाने में और पारदर्शी संवाद स्थापित करने में संस्था प्रयासरत है।

इस नाटक को देखने से पहले मैं बहुत ही संशय की स्थिति में था, की नाटक कैसे होगा? कहीं मेरा समय जायज़ न हो जाए लेकिन नाटक देखने के बाद लगा की अगर मैं नाटक को नहीं देखता तो अपने जीवन की बहुत कीमती चीज को छोड़ देता। इस नाटक को फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित देखा जा सकता है। "फ्रायड के अनुसार, कला और धर्म, दोनों का उद्भव अचेतन मानस की संचित प्रेरणाओं और इच्छाओं से ही होता है। दमित वासनाएं जब उदात्त रूप में अभिव्यक्ति पाती हैं, तो साहित्य और कला को जन्म देती हैं। साहित्य, कला, धर्म, आदि सभी को फ्रायड इन्ही संचित वासनाओं और प्रेरणाओं से उद्भूत मानता है।" (हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या-266)

इस नाटक को आज के समसामयिकता से जोड़ कर देखा जा सकता है, जहाँ आज जीवित इंसान कुछ बोलने को तैयार नहीं है, जो बोल नही पा रहे हैं और ए सी वाले कमरे में अपने-अपने घरों में बैठकर गमले ऊगा रहे हैं। कुछ बोलना नहीं चाहते, उनको लगता है कि वह बोल देगें तो सत्ता के विपक्ष में चले जाएगें और उसका उनको लाभ नहीं मिलेगा। बोलने की चुप्पी को तोड़ने के लिए तैयार नहीं है। बोलने की चुप्पी कब्र में उनका दर्द है जो मरा हुआ है, उसका दर्द है। एक मरा हुआ व्यक्ति अपनी चुप्पी तोड़ने के लिए तैयार है, लेकिन एक जीवित व्यक्ति तैयार नहीं है। 'पहल' के 100 वें अंक में मंगलेश डबराल की कविता 'यथार्थ इन दिनों' की पंक्ति है -

" एक मरा हुआ मनुष्य इस समय

जीवित मनुष्य की तुलना में कहीं ज़्यादा कह रहा है।

उसके शरीर से बहता हुआ रक्त

शरीर के भीतर दौड़ते हुए रक्त से कहीं ज़्यादा आवाज़ कर रहा है

यह नाटक साम्प्रदायिकता के अनेक सवालों को उठाते हुए मनुष्य की बेनकाब चेहरे का पर्दाफाश करती हुई असलियत को बड़े मार्मिकता और त्रासदी पूर्ण बयानो से हमारे सामने लाने का काम करती है। जाति, धर्म, तथा झूठे बन्धनों को बेनक़ाब करती हुई यह पूरी कहानी दो मृत व्यक्तियों के बीच फ्लैश बैक पर आपसी बातचीत की है। लेकिन नाटक का वास्तविक आरम्भ दो कब्र में पड़े मृत व्यक्तियों के बातचीत से होता है 'तू सोता क्यों नहीं? नींद नहीं आ रही क्या?' इस नींद आने में एक प्रकार की बेचैनी और छटपटाहट छिपी हुई है मानवीय और इन्सानियत को बचाने के लिए। जो आज का इन्सान अपने लाभ के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार है लेकिन जब लोकतंत्र की बात करना होगा तो अपने घरों में

कैद हो जाएगें ऐसा लगेगा कि वे लोकतांत्रिक देश में रह ही नहीं रहें हो । इस बात का अन्दाजा कब्र से आती हुई पहले मुर्दे की आवाज से लगाया जा सकता है- 'मुर्दे मौत की नहीं तो क्या जिन्दगी की बात करेंगे'?' दूसरे- लेकिन वो जिन्दगी ही है, जिसमें हररोज़ जीने की नई आस जागती है। हररोज़ लगता है, हालात बदलेंगे। पहला- जिंदगी में ऐसा क्या जिसके लिए उसे याद किया जाय।' दूसरा- ' बहुत कुछ, मसलन रोटी का स्वाद, बच्चों की किलकारी, मुहब्बत का जादू। इन्ही तीनों पर साम्प्रदायिकता पूरे विभाजन और नफ़रत का जहर पूरे कायनात को बदल कर रख देता है। सूकून की तलाश शायद मरने पर मिल जाए, जिन्दा रहने पर तो नहीं मिली।

यह नाटक यह भी दिखने की कोशिश कर रहा है कि साम्प्रदायिक दंगा करवाने वालों की कोई जाति और सूरत नहीं होती, न वहाँ कोई हिंदू होता है और ना ही मुसलमान 'कातिल तो सिर्फ कातिल होता है' जाति और धर्म के नाम पर सामान्य व्यक्ति को ढगा जाता है। हाद तो तब होती है जब जाति और मजहब के नाम पर प्यार करने से रोका जाता। प्रेम की कोई जाति नहीं होती, प्रेम सिर्फ प्रेम है। यह नाटक इस पर भी प्रश्न करता दिखाई देता है। भारतीय में समाज ने ब्राह्मण, नाई, धोबी, शिया, सुन्नी आदि ऊंच नीच के नाम पर प्रेम करने वालों रोका गया है। और जब वे मानतें तो उन्हें मार दिया जाता है। साम्प्रदायिक दंगे जब तक जिन्दा है तब तक पूंजीवादी सत्ता के सामने बहुत बड़ा प्रश्न ये कब्रें खडी़ करती रहेगीं। 'इतना भी नहीं जानता कि भूख से सिर्फ गरीब मरते हैं?' इस सच्चाई को कहीं भी दफ़न करने पर भी नहीं छुपाया जा सकता। भूख की आग से गरीब किसान और मजबूर और उसके बच्चे मरते हैं और कोई दूसरा नहीं। कोरोना का काल खण्ड इसका सबसे बड़ा प्रमाण हो सकता है। गरीब व्यक्ति रोटी और रोजगार के लिए दर-बदर भटकते रहते हैं। अपनी भूख को अपने अन्दर ही दफ़न कर लेता और किसी कहता नहीं। और किसी से कहता नहीं, कहें किससे कोई तो नहीं है जो उसकी भूख को सुने पहला- 'कोई हमारी बात सुन तो नहीं रहा?' दूसरे- छोड़! जिन्दा जी किसी ने नहीं सुनी तो अब क्या ख़ाक़ सुनेगें? हाँ, जिन शोहदों ने मुझे मारा उन्होंने सड़क जाम किया। दुकानें जलाई। मारे गए राहगीर और तमाशबीन। पुलिस ने आनन-फानन में सारी लाशें ठिकाने लगा दी।

इस नाटक की थीम को असग़र वजाहत की कहानी 'शाह आलम कैम्प की रूहें' से जोड़ कर देखा जा सकता है।

इस नाटक की खा़स बात यह थी कि स्टेज और दर्शक के बीच कोई फर्क नहीं था। दर्शक को यह नहीं महसूस हुआ की नाटक स्टेज पर हो रहा है। दरअसल नाटक स्टेज पर था ही नहीं नाटक को बहुत ही सीमित स्पेस में खेला गया और उसी अनुपात में दर्शक भी बैठाए गए। नाटक की रंगसज्जा बहुत ही काबिलेतारीफ थी, रंगकर्मियों के द्वारा ही बनाया गया था। नाटक के समाप्त होने पर दर्शक से सम्वाद स्थापित करने की कोशिश की गई है, ताकि दर्शक के मन की जिज्ञासा का समाधान किया जा सके। और दर्शक से प्रश्न भी लिए गए, यहाँ प्रश्न लेने का मतलब यह है कि नाटक पर गम्भीर रूप से पहले चिन्तन

किया गया है। नाटक देखने वाले दर्शकों की संख्या १५-२० थी। दर्शकों की संख्या कम-कम रखीं गईं थीं। प्रश्न पूछने पर पता चल की यह किस लिए तो, बताया गया कि 'हम ज़्यादा से ज़्यादा नाटक को मंचित कर सके और नाटक की कथा को और ज़्यादा सफाई के साथ ज़्यादा से ज़्यादा लोगों तक पहुँचा सकें। यह नाटक ४०- ४५ मिनट का था पात्रों की संख्या सात है जिसमें छ: पुरुष और एक महिला। लाइट एवं साउंड कोरस की ध्वनि बहुत संजीली थी। पुरे नाटक में संगीत का प्रयोग अपने से किया गया था, बाहरी धुन का प्रयोग नहीं किया गया। डिजाइन सब कुछ अपने से ही किया गया- कैदखाने, स्टोररुम की तरह टूटे- फूटे, अस्त- पंजर, जहाँ कबाड़ रखा जाता है, कुछ मूर्दो का पुतला अपने से बनाए गए थे। बिना माइक के आवाज बहुत हल्की थी। तीन तरफ़ परदे का प्रयोग किया गया जिसमें परदा बांस-बल्लियो के सहारे कपड़े और बोरी को मिट्टी से पूता (लेप) लगाया गया था। और नाटक की सबसे बड़ी बात यह थी कि जनवरी माह की ठण्ड में मिट्टी पर अभिनेताओं ने फटे चिथड़ों हुए कपडों अभिनय किया।

यह सही बात है थिएटरों की अपनी सीमा होती है लेकिन ऐसे नाटक को खुले परदे पर खेला जाना चाहिए ताकि जन सामान्य तक कलाकरो का अभिनय और कथा का कथ्य आम लोगों तक पहुँच सके और व्यक्ति अपने इतिहास को दोहराने से पहले एक बार जरूर सोचे।

इन्सान अपने स्वार्थ के लिए मानवीय मूल्यों को कुचल देता है और गिरी से गिरी हरकतों से बाज नही आता इस नाटक को मनोवैज्ञानिक धरातल पर रख कर देखा जा सकता है। कहीं कहीं हम किसी वस्तु को उतनी बरीकी से नहीं देख पाते जितना की सुषुप्ता अवस्था में दे पाते हैं। इसी तरह इस नाटक में भी देखा गया है की जिस बात के मर्म को एक इंसान जिन्दा रहते हुए नहीं कह पाया वह मर कर कब्र के भीतर से कह रहा है और बढ़े सफाई के साथ। यह नाटक यह भी दिखाता हैं इस दुनिया में इन्शानियत और मानवीयता से बढ़कर कोई भी धर्म नहीं हैं। हिंदू, मुसलमान, पारसी, सिन्धी सब कबीर के कुंए समान है। जिसमें सभी लोग एक समान पानी भरने का काम करतें हैं। आज के व्यक्ति को इन्शानी किताब को पढ़ने की जरूरत है। यह कार्य रंगमंच के आईने से परोसने का काम किया गया है।